**International Research Journal of Human Resources and Social Sciences**
**ISSN(O): (2349-4085) ISSN(P): (2394-4218)**
**Impact Factor- 5.414, Volume 5, Issue 1, January 2018**
Website- www.aarf.asia, Email : editor@aarf.asia , editoraarf@gmail.com

# भारतीय लोकतन्त्र में दलित राजनीति का भविष्य

**सुधा कुमारी, शोधार्थी,**
**स्नातकोत्तर राजनीति विज्ञान विभाग,**
**तिलकामाँझी भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर**

**भूमिका** : प्रस्तुत आलेख में दर्शाया गया है कि भारतीय राजनैतिक व्यवस्था के अन्तर्गत लोकतंत्र की अपनी यात्रा में दलित राजनीति और राजनैतिक दलों की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था को बनाने, संविधान निर्माण एवं संशोधन करने, चुनावी राजनीति में दलित वोटों और सरकार के गठन तथा संचालन में राजनीतिक दलों की भूमिका अहम होती है।

दलित राजनीति जिस वर्चस्व रखने वाली सामाजिक–राजनीतिक संस्कृति के खिलाफ शुरू हुआ था, धीरे–धीरे उसी में तिरोहित होता गया है। वर्चस्व रखने वाले राजनीतिक दलों के गुण–अवगुण उसमें भी आते गए हैं। भारत के विभिन्न राज्यों में दलित राजनीति के कई रूप सक्रिय हैं, अतः इनकी संभावनाओं, समस्याओं और राजनैतिक संकट के रूप भी भिन्न होगें।

दलित राजनीति उभार का नेतृत्व विकसित होता रहा है। लेकिन सब में एक आकांक्षा समान रही–वह है शिक्षा व राजनीति के माध्यम से राज्यसत्ता की योजनाओं में हिस्सेदारी व सामाजिक सम्मान की चाह। राज्यसत्ता और लोकतांत्रिक राजनैतिक संस्कृति से उन्हें सामाजिक बंधनों से मुक्ति व विकास की दिशा में आगे बढ़ने में मदद भी मिली है।

दलित समूह एक 'होमोजेनियस' समूह नहीं है, उसमें कई स्तर व टकराहटों से भरे जातीय, उप–जातीय चरित्र भी काम करते हैं। दलित संख्या के स्तर पर बड़े समुदायों के साथ कई छोटे–छोटे दलित समुदाय भी हैं, जिन्हें अब भी राजनीतिक पहचान नहीं मिली है। दलित राजनीति की एक चुनौती ऐसे छोटे–छोटे समुदायों को राजनीति और विकास में भागीदारी दिलाना

**© Associated Asia Research Foundation (AARF)**
A Monthly Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International e-Journal - Included in the International Serial Directories.

भी है। भाषा के सन्दर्भ में, दलित आकांक्षा और वामपंथी शब्दावलियों का मिला–जुला रूप जो प्रकाश अंबेडकर, नामदेव ढासाल में देखा गया था, उसी भाषा को फिर से इस दलित युवा नेतृत्व ने गढ़ा है। यह भाषा प्रारंभ में तो आकर्षक लगती है, स्ट्रीटफाईट के लिए उत्तेजित भी करती है। पर इसमें बड़े सामाजिक परविर्तन के निहित कोई योजना अभी तो नहीं दिखती। राजनीतिक दलों की सत्ता में भागिदारी के अन्तर्गत दलित जाति का बँटवारे के वाहक और लोकतांत्रिक राजनीति में सामाजिक समूहों की तरफ से मोल–तोल करने वाले के रूप में की गयी है।

राजनीतिक दलों की प्रकृति और कामकाज के बारे में करीब से जानने की कोशिश करने पर पता चलता है, खासकर अपने देश के राजनीतिक दलों के बारे में। हमें राजनीतिक दलों की जरूरत क्यों है तथा लोकतंत्र के लिए कितने राजनीतिक दलों का होना बेहतर है ? अधिकतर आम नागरिकों के लिए लोकतंत्र का मतलब राजनीतिक दल ही है। अगर आप देश के दूर–दराज के ग्रामीण इलाकों में जाएँ और कम पढ़े–लिखे लोगों से बात करें तो संभव है, कि आपको ऐसे लोग मिलें जिन्हें संविधान के बारे में या सरकार के स्वरूप के बारे में कुछ भी मालूम न हो या का कम मालूम। बहरहाल, राजनीतिक दलों के बारे में उन्हें जरूर कुछ न कुछ मालूम होता है। लेकिन राजनीतिक दलों के बारे में हर कोई कुछ न कुछ जानता है, तो इसका मतलब यह नहीं है कि पार्टियाँ बहुत लोकप्रिय हैं। अधिकतर लोग आम तौर पर दलों के बारे में खराब राय रखते हैं। अपनी लोकतांत्रिक व्यवस्था और राजनीतिक जीवन की हर बुराई के लिए वे राजनीतिक दलों को ही जिम्मेवार मानते हैं। सामाजिक और राजनीतिक विभाजनों के लिए भी दलों को ही दोषी माना जाता है। ऐसे में यह सवाल स्वभाविक रूप से उठता है, क्या हमें सचमुच राजनीतिक दलों की जरूरत है? करीब 100 साल पहले दुनिया के कुछ ही देशों में और वह भी गिनती के राजनीतिक दल थे।

राजनीतिक दल को लोगों के एक ऐसे संगठित समूह के रूप में समझा जा सकता है, जो चुनाव लड़ने और सरकार में राजनीतिक सत्ता हासिल करने के उद्देश्य से काम करता है। समाज के सामूहिक हित को ध्यान में रखकर यह समूह कुछ नीतियाँ और कार्यक्रम तय करता है। सामूहिक हित एक विवादास्पद विचार है। इसे लेकर सबकी राय अलग–अलग होती है। इसी आधार पर दल लोगों को यह समझाने का प्रयास करते हैं कि उनकी नीतियाँ औरों से बेहतर हैं। वे लोगों का समर्थन पाकर चुनाव जीतने के बाद उन नीतियों को लागू करने का प्रयास करते हैं। इस प्रकार दल किसी समाज के बुनियादी राजनीतिक विभाजन को भी दर्शाते हैं। पार्टी समाज के किसी एक हिस्से से संबंधित होती है इसलिए उसका नजरिया समाज के उस वर्ग/समुदाय

विशेष की तरफ झुका होता है। किसी दल की पहचान उसकी नीतियों और उसके आधार से तय होती है।

**राजनीतिक दल के कार्य :** राजनीतिक दल क्या करते हैं? मूलतः राजनीतिक दल राजनीतिक पदों को भरते हैं और राजनीतिक सत्ता का इस्तेमाल करते हैं। दल इस काम को कई तरह से करते हैं– 1. राजनीतिकि दल चुनाव लड़ते हैं। अधिकांश लोकतांत्रिक देशों में चुनाव राजनीतिक दलों द्वारा खड़ा किए गए उम्मीदवारों के बीच लड़ा जाता है। राजनीतिक दल उम्मीदवारों का चुनाव कई तरीकों से करते हैं। अमेरीका जैसे कुछ देशों में उम्मीदवार का चुनाव दल के सदस्य और समर्थक करते हैं। अब इस तरह से उम्मीदवार चुनने वाले देशों की संख्या बढ़ती जा रही है। अन्य देशों, जैसे भारत में, दलों के नेता ही उम्मीदवार चुनते हैं। 2 दल अलग–अलग नीतियों और कार्यक्रमों को मतदाताओं के सामने रखते हैं और मतदाता अपनी पसंद की नीतियाँ और कार्यक्रम चुनते हैं। देश के लिए कौन–सी नीतियाँ ठीक हैं इस बारे में हममें से सभी की राय अलग–अलग हो सकती है। पर कोई भी सरकार इतने अलग–अलग विचारों को एक साथ लेकर नहीं चल सकती। लोकतंत्र में समान या मिलते–जुलते विचारों को एक साथ लाना होता है, ताकि सरकार की नीतियों को एक दिशा दी जा सके। राजनीतिक दल यही काम करती हैं। पार्टियाँ तरह–तरह के विचारों को कुछ बुनियादी राय तक समेट लाती हैं, जिनका वे समर्थन करती हैं। सरकार प्रायः शासक दल की राय के अनुरूप अपनी नीतियाँ तय करती है। 3 पार्टियाँ देश के कानून निर्माण में निर्णायक भूमिका निभाती हैं। कानूनों पर औपचारिक बहस होती है और उन्हें विधायिका में पास करवाना पड़ता है, लेकिन विधायिका के अधिकतर सदस्य किसी न किसी दल के सदस्य होते हैं। इस कारण वे अपने दल के नेता के निर्देश पर फैसला करते हैं। 4 दल ही सरकार बनाते और चलाते हैं। हमने पिछले साल पढ़ा था कि नीतियों और बड़े फैसलों के मामले में निर्णय राजनेता ही लेते हैं और ये नेता विभिन्न दलों के होते हैं। पार्टियाँ नेता चुनती हैं, उनको प्रशिक्षित करती हैं और फिर पार्टी के सिद्धांतों और कार्यक्रम के अनुसार फैसले करने के लिए उन्हें मंत्री बनाती हैं ताकि वे पार्टी की इच्छा के अनुसार सरकार चला सके। 5 चुनाव हारने वाले दल शासक दल के विरोधी पक्ष की भूमिका निभाते हैं। सरकार की गलत नीतियों और असफलताओं की आलोचना करने के साथ वह अपनी अलग राय भी रखते हैं। विपक्षी दल सरकार के खिलाफ आम जनता को भी गोलबंद करते हैं। 6 जनमत निर्माण में दल महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। वे मुद्दों को उठाते और उन पर बहस करते हैं। विभिन्न दलों के लाखों कार्यकर्ता देश–भर में बिखरे होते हैं। समाज के विभिन्न वर्गों में उनके मित्र संगठन या दबाव समूह भी काम करते रहते हैं। दल कई दफे

लोगों की समस्याओं को लेकर आंदोलन भी करते हैं। अक्सर विभिन्न दलों द्वारा रखी जाने वाली राय के इर्द–गिर्द ही समाज के लोगों की राय बनती जाती है तथा 7 दल ही सरकारी मशीनरी और सरकार द्वारा चलाए जाने वाले कल्याण कार्यक्रमों तक लोगों की पहुँच बनाते हैं। एक साधारण नागरिक के लिए किसी सरकारी अधिकारी की तुलना में किसी राजनीतिक कार्यकर्ता से संपर्क साधना आसान होता है।

**राजनीतिक दल की आवश्यकता :** दरअसल हमें राजनीतिक दलों की जरूरत इन्हीं कामों के लिए है। पर हमें अभी भी इस सवाल को पूछने की जरूरत है कि आधुनिक लोकतंत्र राजनीतिक दलों के बिना क्यों नहीं चल सकता? दलों के बिना क्या स्थिति होगी। इसकी कल्पना करके ही हम उनकी जरूरत को समझ सकते हैं। अगर दल न हों तो सारे उम्मीदवार स्वतंत्रता या निर्दलीय होंगे। तब, इनमें से कोई भी बड़े नीतिगत बदलाव के बारे में लोगों से चुनावी वादे करने की स्थिति में नहीं होगा। सरकार बन जाएगी पर उसकी उपयोगिता संदिग्ध होगी। निर्वाचित प्रतिनिधि सिर्फ अपने निर्वाचन क्षेत्रों में किए गए कामों के लिए जवाबदेह होंगे। लेकिन, देश के चलते इसके लिए कोई उत्तरदायी नहीं होगा। हम गैर–दलीय आधार पर होने वाले पंचायत चुनावों का उदाहरण सामने रखकर भी इस बात की परख कर सकते हैं। हालाँकि इन चुनावों में दल औपचारिक रूप से अपने उम्मीदवार नहीं खड़े करते लेकिन हम पाते हैं कि चुनाव के अवसर पर पूरा गाँव कई खेमों में बँट जाता है और हर खेमा सभी पदों के लिए अपने उम्मीदवारों का 'पैनल' उतारता है। राजनीतिक दल भी ठीक यही काम करते हैं।

जब समाज के आकार बड़े और जटिल हो जाते हैं तब उन्हें विभिन्न मुद्दों पर अलग–अलग विचारों को समेटने और सरकार की नजर में लाने के लिए किसी माध्यम या एजेंसी की जरूरत होती है। विभिन्न जगहों से आए प्रतिनिधियों को साथ करने की जरूरत होती है, ताकि एक जिम्मेवार सरकार का गठन हो सके। उन्हें सरकार का समर्थन करने या उस पर अंकुश रखने, नीतियाँ बनवाने और नीतियों का समर्थन अथवा विरोध करने के लिए उपकरणों की जरूरत होती है। प्रत्येक प्रतिनिधि–सरकार की ऐसी जो भी जरूरतें होती हैं, राजनीतिक दल उनको पूरा करते हैं।

**कितने राजनीतिक दल होना चाहिए :** लोकतंत्र में नागरिकों का कोई भी समूह राजनीतिक दल बना सकता है। इस औपचारिक अर्थ में सभी देशों में बहुत से राजनीतिक दल हैं। भारत में ही चुनाव आयोग में नाम पंजीकृत कराने वाले दलों की संख्या 750 से ज्यादा है। लेकिन, हर दल चुनाव में गंभीर चुनौती देने की स्थिति में नहीं होता। चुनाव जीतने और सरकार बनाने की होड़ में

आमतौर पर कुछेक पार्टियाँ ही सक्रिय होती हैं। ऐसे में सवाल यह उठता है कि लोकतंत्र की बेहतरीन के लिए कितने दलों का होना अच्छा है? कई देशों में सिर्फ एक ही दल को सरकार बनाने और चलाने की अनुमति है।

**राष्ट्रीय राजनीतिक दल :** विश्व के संघीय व्यवस्था वाले लोकतंत्रों में दो तरह के राजनीतिक दल हैं : संघीय इकाइयों में से सिर्फ एक इकाई में अस्तित्व रखने वाले दल और अनेक या संघ की सभी इकाइयों में अस्तित्व रखने वाले दल। भारत में भी यही स्थिति है। कई पार्टियाँ पूरे देश में फैली हुई हैं और उन्हें राष्ट्रीय पार्टी कहा जाता है। इन दलों की विभिन्न राज्यों में इकाइयाँ हैं। पर कुल मिलाकर देखें तो ये सारी इकाइयाँ राष्ट्रीय स्तर पर तय होने वाली नीतियों, कार्यक्रमों और रणनीतियों को ही मानती हैं। देश की हर पार्टी को चुनाव आयोग में अपनी पंजीकरण कराना पड़ता है। आयोग सभी दलों को समान मानता है पर यह बड़े और स्थापित दलों को कुछ विशेष सुविधाएँ देता है। इन्हें अलग चुनाव चिन्ह दिया जाता है, जिसका प्रयोग पार्टी का अधिकृत उम्मीदवार ही कर सकता है। इस विशेषाधिकार और कुछ अन्य लाभ पाने वाली पार्टियों को 'मान्यता प्राप्त' दल कहते हैं। चुनाव आयोग ने स्पष्ट नियम बनाए हैं कि कोई दल कितने प्रतिशत वोट और सीट जीतकर 'मान्यता प्राप्त' दल बन सकता है। जब कोई पार्टी राज्य विधानसभा के चुनाव में पड़े कुल मतों का 6 फीसदी या उससे अधिक हासिल करती है और कम से कम दो सीटों पर जीत दर्ज करती है तो उसे अपने राज्य के राजनीतिक दल के रूप में मान्यता मिल जाती है। अगर कोई दल लोकसभा चुनाव में पड़े कुल वोट का अथवा चार राज्यों के विधान सभा चुनाव में पड़े कुल वोटों का 6 प्रतिशत हासिल करता है और लोकसभा के चुनाव में कम से कम चार सीटों पर जीत दर्ज करता है तो उसे राष्ट्रीय दल की मान्यता मिलती है।

**राज्य स्तरीय राजनीतिक दल :** देश के शेष सभी प्रमुख दलों को चुनाव आयोग ने 'प्रांतीय दल' के रूप में मान्यता दी है। आमतौर पर इन्हें क्षेत्रीय दल कहा जाता है, पर यह जरूरी नहीं है कि अपनी विचारधारा या नजरिए में ये पार्टियाँ क्षेत्रीय ही हों। इनमें से कुछ अखिल भारतीय दल हैं पर उन्हें कुछ प्रांतों में ही सफलता मिल पाई है। समाजवादी पार्टी, समता पार्टी और राष्ट्रीय जनता दल का राष्ट्रीय स्तर पर राजनीतिक संगठन है और इनकी कई राज्यों में इकाइयाँ हैं। बीजू जनता दल, सिक्किम लोकतांत्रिक मोर्चा और मिजो नेशनल फ्रंट जैसी पार्टियाँ अपनी क्षेत्रीय पहचान को लेकर सचेत हैं। पिछले तीन दशकों में प्रांतीय दलों की संख्या और ताकत में वृद्धि हुई है। इससे भारतीय संसद विविधताओं से और भी ज्यादा संपन्न हुई है। किसी एक राष्ट्रीय दल का लोकसभा में बहुमत नहीं है। परिणामस्वरूप राष्ट्रीय दल प्रांतीय दलों के साथ गठबंधन करने

को मजबूर हुए हैं। 1996 के बाद से लगभग प्रत्येक प्रांतीय दल को एक या दूसरी राष्ट्रीय स्तर की गठबंधन सरकार का हिस्सा बनने का अवसर मिला है। इससे हमारे देश में संघवाद और लोकतंत्र मजबूत हुए हैं।

**राजनीतिक दलों के लिए चुनौतियाँ :** हमने देखा है कि लोकतंत्र के कामकाज के लिए राजनीतिक पार्टियाँ कितनी महत्वपूर्ण हैं। चूँकि दल ही लोकतंत्र का सबसे ज्यादा प्रकट रूप हैं, इसलिए यह स्वाभाविक है कि लोकतंत्र के कामकाज की गड़बड़ियों के लिए लोग राजनीतिक दलों को ही दोषी ठहराएँ। पूरी दुनिया में लोग इस बात से नाराज रहते हैं कि राजनीतिक दल अपना काम ठीक ढंग से नहीं करते। हमारे लोकतंत्र के साथ भी यही बात लागू होती है। आम जनता की नाराजगी और आलोचना राजनीतिक दलों के मुख्यतः कामकाज के चार पहलुओं पर ही केन्द्रित रही है।

लोकतंत्र का प्रभावी उपकरण बने रहने के लिए राजनीतिक दलों को इन चुनौतियों का सामना करना चाहिए और इन पर जीत हासिल करनी चाहिए। पहली चुनौती है पार्टी के भीतर आंतरिक लोकतंत्र का न होना। सारी दुनिया में यह प्रवृत्ति बन गई है कि सारी ताकत एक या कुछेक नेताओं के हाथ में सिमट जाती है। पार्टियों के पास न सदस्यों की खुली सूची होती है, न नियमित रूप से सांगठनिक बैठकें होती हैं। इनके आंतरिक चुनाव भी नहीं होते। कार्यकर्ताओं से वे सूचनाओं का साझा भी नहीं करते। सामान्य कार्यकर्ता अनजान ही रहता है कि पार्टी के अंदर क्या चल रहा है। उसके पास न तो नेताओं से जुड़कर फैसलों को प्रभावित करने की ताकत होती है न ही कोई और माध्यम। परिणामस्वरूप पार्टी के नाम पर सारे फैसले लेने का अधिकार उस पार्टी के नेता हथिया लेते हैं। चूँकि कुछेक नेताओं के पास ही असली ताकत होती है इसलिए जो उनसे असहमत होते हैं, उनका पार्टी में टिके रह पाना मुश्किल हो जाता है। पार्टी के सिद्धांतों और नीतियों से निष्ठा की जगह नेता से निष्ठा ही ज्यादा महत्वपूर्ण बन जाती है। दूसरी चुनौती पहली चुनौती से ही जुड़ी है। यह है वंशवाद की चुनौती। चूँकि अधिकांश दल अपना कामकाज पारदर्शी तरीके से नहीं करते इसलिए सामान्य कार्यकर्ता के नेता बनने और उपर आने की गुंजाइश काफी कम होती है। जो लोग नेता होते हैं वे अनुचित लाभ लेते हुए अपने नजदीकी लोगों और यहाँ तक कि अपने ही परिवार के लोगों को आगे बढ़ाते हैं। अनेक दलों में शीर्ष पद पर हमेशा एक ही परिवार के लोग आते हैं। यह दल के अन्य सदस्यों के साथ अन्याय है। यह बात लोकतंत्र के लिए भी अच्छी नहीं है क्योंकि इससे अनुभवहीन और बिना जनाधार वाले लोग ताकत वाले पदों पर पहुँच जाते हैं। यह प्रवृत्ति कुछ प्राचीन लोकतांत्रिक देशों सहित कमोबेश पूरी

दुनिया में दिखाई देती है। तीसरी चुनौती दलों में, (खासकर चुनाव के समय) पैसा और अपराधी तत्वों की बढ़ती घुसपैठ की है। चूँकि पार्टियों की सारी चिंता चुनाव जीतने की होती है अतः इसके लिए कोई भी जायज–नाजायज तरीका अपनाने से वे परहेज नहीं करतीं। वे ऐसे ही उम्मीदवार उतारती हैं जिनके पास काफी पैसा हो या जो पैसे जुटा सके। किसी पार्टी को ज्यादा धन देने वाली कंपनियाँ और अमीर लोग उस पार्टी की नीतियों और फैसलों को भी प्रभावित करते हैं। कई बार पार्टियाँ चुनाव जीत सकने वाले अपराधियों का समर्थन करती हैं या उनकी मदद लेती हैं। दुनिया भर में लोकतंत्र के समर्थक लोकतांत्रिक राजनीति में अमीर लोग और बड़ी कंपनियों की बढ़ती भूमिका को लेकर चिंतित हैं। वास्तव में, चौथी चुनौती राजनीतिक पार्टियों के बीच विकल्पहीनता की स्थिति है।

सार्थक विकल्प का मतलब होता है कि विभिन्न पार्टियों की नीतियों और कार्यक्रमों में महत्वपूर्ण अंतर हो। हाल के वर्षों में दलों के बीच वैचारिक अंतर कम होता गया है और यह प्रवृत्ति दुनिया–भर में दिखती है। जैसे, ब्रिटेन की लेबर पार्टी और कंजरवेटिव पार्टी के बीच अब बड़ा कम अंतर रह गया है। दोनों दल बुनियादी मसलों पर सहमत हैं और उनके बीच अंतर बस ब्यौरों का रह गया है कि नीतियाँ कैसे बनाई जाएँ और उन्हीं कैसे लागू किया जाए। अपने देश में भी सभी बड़ी पार्टियों के बीच आर्थिक मसलों पर बड़ा कम अंतर रह गया है। जो लोग इससे अलग नीतियाँ चाहते हैं, उनके लिए कोई विकल्प उपलब्ध नहीं है। कई बार लोगों के पास एकदम नया नेता चुनने का विकल्प भी नहीं होता क्योंकि वही थोड़े से नेता हर दल में आते–जाते रहते हैं।

**निष्कर्ष :** जिस लोकतंत्र ने दलित राजनीतिक के विकास के लिए कैनवास प्रदान किया है, जिस चुनावी लोकतंत्र ने उन्हें उड़ने को आकाश दिया है, उसी राजनैतिक तंत्र ने ऐसी काजल की कोठरी भी बना दी है, जिसमें उन्हें बच–बचकर राजनैतिक यात्रा करनी पड़ेगी। एक वैकल्पिक राजनीति का स्वप्न बनाए रखना हो, जो भले पूरी तरह सच न हो, किन्तु उसका आभास भी दलित राजनीति में नई जान फूंक सकता है। राजनीतिक दलों की समस्या के लिए महज कानूनी समाधान की बात करते हुए हमें सावधान रहना चाहिए। दलों को जरूरत से ज्यादा नियमों से जकड़ना नुकसानदेह भी हो सकता है। इससे सभी दल कानून को दरकिनार करने का तरीका ढूँढ़ने लगेंगे। इसके अलावा राजनीतिक दल खुद भी ऐसा कानून पास करने पर सहमत नहीं होंगे जिसे वे पसंद नहीं करते। दो और तरीके हैं जिनसे राजनीतिक दलों को सुधारा जा सकता है। पहला तरीका है राजनीतिक दलों पर लोगों द्वारा दबाव बनाने का। यह काम चिट्ठियाँ लिखने,

प्रचार करने और आंदोलनों के जरिये किया जा सकता है। आम नागरिक, दबाव समूह, आंदोलन और मीडिया के माध्यम से यह काम किया जा सकता है। अगर राजनीतिक दलों को लगे कि सुधार न करने से उनका भविष्य में जनाधर गिरने लगेगा या उनकी छवि खराब होगी तो इसे लेकर वे गंभीर होने लगेंगे और राजनैतिक दल सदस्यों की संख्या घटाने हेतु विचार करना पसंद करेंगें। सुधार का दूसरा तरीका है सुधार की इच्छा रखने वालों का खुद राजनीतिक दलों में शामिल होना। लोकतंत्र की गुणवत्ता लोकतंत्र में लोगों की भागीदारी से तय होती है। अगर आम नागरिक खुद राजनीति में हिस्सा न लें और बाहर से ही बातें करते रहें तो सुधार होना मुश्किल है। खराब राजनीति का समाधान है ज्यादा से ज्यादा राजनीति और बेहतर राजनीति करना।

## सन्दर्भ–ग्रन्थ–सूची


1. सुभाष कष्यप : भारतीय संसद : समस्याएँ एवं समाधान, हिन्दी माध्यम, कार्यान्वयन निदेषालय, नई दिल्ली, प्रकाशन वर्ष–1999, पृ संख्या–136
2. प्रसून वाजपेयी : संसद : लोकतंत्र या नजरों का धोखा, नई दिल्ली, वर्ष–2014, पृष्ठ संख्या–35
3. एस0 पी0 बनर्जी : डेमोक्रेसी : सम रिफ्लैकषंस ; एषेज इन सोषल एण्ड पोलीटिकल फिलॉसफी, अनुवाद, दिल्ली, वर्ष–1989, पृ0सं0–263
4. बी0 के0 गोखले : द कॉन्सट्टि्च्युषन ऑफ इण्डिया, भारत सरकार मुम्बई, वर्ष–1972, पृष्ठ संख्या–307–308
5. किषन कालजयी : जय हो जनता की, (संपादकीय,) सबलोग, दिल्ली, वर्ष–2009, पृ0 सं0–5
6. आनंद प्रधान : इस जनादेष के सबक, (आलेख), युवा संवाद, दिल्ली, वर्ष–2014, पृष्ठ संख्या–8